|| श्रीहरिः ||

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |

देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 15: पुरुषोत्तमयोग

1/2 (श्लोक 1-5), शनिवार, 11 मई 2024

विवेचक: गीता प्रवीण रूपल जी शुक्ला

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/sIR6SL514eM

परमात्मा की प्राप्ति के साधन

अति सुन्दर दीप प्रज्वलन, प्रार्थना एवम् गुरु वन्दना के पश्चात् आज का विवेचन सत्र प्रारम्भ हुआ। श्रीभगवान् की असीम अनुकम्पा से हम अपने कल्याण के लिए, अपने जीवन को सार्थक बनाने हेतु इस ज्ञान के मार्ग पर, श्रीगीता जी के मार्ग पर, गीता जी को समझने के लिए, जानने के लिए, उनके सिद्धान्तों को जानने के लिए, अपने जीवन में उतारने के दिए इस मनन के मार्ग पर चलने लगे हैं।

श्रीगीता जी को हम पढ़ते हैं तो हमारे स्वभाव में भी कुछ बदलाव आना चाहिए, उनको अपने जीवन में उतारना चाहिए और इसके लिए हम निरन्तर प्रयासरत भी हैं। श्रीभगवान् की हम पर कृपा क्यों हुई? शायद हमारे इस जन्म के सुकृत अथवा पूर्वजन्म के सुकृत फलीभूत हो गए जिस कारण हमें ऐसा अवसर मिला, न जाने कौनसे ऐसे सन्तों की हम पर कृपादृष्टि हो गई जो हम गीता जी के मार्ग पर चलने लगे, गीता जी को समझने हेतु, अपने जीवन को सार्थक बनाने हेतु गीता जी को पढ़ने, समझने और जानने के मार्ग पर बढ़ने लगे। गीता जी को समझना, जानना और पढ़ना, मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने हेतु इससे सहज कोई और मार्ग है ही नहीं, ऐसा साधु-सन्त बार-बार कहते रहे हैं।

गीता जी के मार्ग पर हम अपने प्रयासों से बढ़े हैं, ऐसा सोचना एक बहुत बड़ी भूल होगी क्योंकि यह केवल और केवल श्रीभगवान् की ही साक्षात् कृपा है हम पर, ऐसा बार-बार आचार्यों जी ने कहा है।

श्रीगुरु आदिशङ्कराचार्य जी भी "शांकरभाष्य" में कहते हैं_

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य:।

अर्थात:- जिनका चयन स्वयं भगवान करते हैं उनको ही यह मार्ग प्राप्त होता है और हम सबको यह गीता जी का मार्ग प्राप्त हुआ है, हम क्यों गीता जी में इतने प्रवृत्त हो गए हैं, इसके लिए हमें मानना चाहिए कि भगवान की कृपा है हम पर अथवा किसी सन्त की कृपा दृष्टि हो गई, जिस कारण हम सबको यह अवसर मिला है।

बारहवाँ अध्याय पूर्ण हो गया और हम सभी ने उस अध्याय में मनुष्य के उनतालीस भक्त लक्षण देखे कि कैसे श्रीभगवान ने "मम प्रिय:" बार-बार कहकर यह बताया कि कौनसे भक्त उनके प्रिय हो सकते हैं, कौनसे प्रकार के गुणों को धारण करके वह मेरे

प्रिय भक्त हो जाएँगे।

बारहवाँ अध्याय गीता जी का श्रेष्ठतम अध्याय है और भक्तिमार्ग के श्रेष्ठतम अध्याय को पढ़ने के बाद अब पन्द्रहवाँ अध्याय, जो ज्ञानमार्ग का श्रेष्ठतम अध्याय है श्रीमद्भगवद्गीता में। यह समझने में क्लिष्ट भी है और थोड़ा-सा कठिन भी है लेकिन समझने योग्य है और इसके अर्थ को जानने का थोड़ा प्रयास भी करते हैं।

बारहवाँ और पन्द्रहवाँ अध्याय श्रीगीता जी के सबसे छोटे अध्याय हैं तो इसी क्रम में हम पहले बारहवें अध्याय को पढ़ते हैं और फिर पन्द्रहवाँ अध्याय सीखते हैं। दोनों अध्यायों में भिन्न क्या है? बारहवें अध्याय में सभी श्लोक अनुष्टुप छन्द के हैं, परन्तु पन्द्रहवें अध्याय में कुछ श्लोक त्रिष्टुप छन्द के भी हैं।

अब अनुष्टुप छन्द और त्रिष्टुप छन्द का अन्तर क्या है? इसे समझते हैं श्रीगीता जी एक काव्य-रचना है और ऐसी काव्य-रचना में छन्द तो होते हैं परन्तु श्रीगीता जी में दो ही प्रकार के छन्दों का उपयोग हुआ है। अनुष्टुप छन्द में चार चरण में आठ अक्षरों का समूह होता है और आधे अक्षरों की गणना नहीं होती है परन्तु त्रिष्टुप छन्द में प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होते हैं, ऐसा होते हुए प्रत्येक चरण में चवालीस अक्षर होते हैं, बस इतना ही अन्तर होता है। एक-आध बार वर्ण आगे-पीछे हो सकता है, जिस कारण गीता जी में ग्यारह की जगह बारह वर्णों का उपयोग हुआ है अथवा दस वर्ण ही मिलते हैं, जो व्याकरण का विषय है। पन्द्रहवें अध्याय में दो से पाँच और पन्द्रहवाँ श्लोक ही त्रिष्टुप छन्द के हैं।

दन्तकथा है कि यदि किसी का देहावसान होता है तो इस अध्याय का पाठ बहुत प्रचलन में है, पर ऐसा क्यों करते हैं? यदि हम खाना खाने लगे हैं और कुछ समय है तो हम पन्द्रहवें अध्याय का पाठ करते हैं फिर भोजन ग्रहण करते हैं। यदि कोई अवसर, जैसे किसी के घर बालक होता है तो भी पन्द्रहवें अध्याय का पाठ करते हैं। यदि कोई इस सृष्टि से जा रहा है या जानेवाला है या किसी का जन्म होनेवाला है या किसी का जन्म हो गया है तो भी पन्द्रहवें अध्याय का अनुपठन किया जाता है। कैसा भी अवसरर क्यों न हो, शुभ या अशुभ, पन्द्रहवें अध्याय का पाठ किया जाता है। ऐसा क्यों होता है? पन्द्रहवाँ अध्याय ही क्यों किया जाता है?

क्योंकि श्रीभगवान ने इस पन्द्रहवें अध्याय को शास्त्र की उपाधि दी है।

श्रीभगवान पन्द्रहवें अध्याय के अन्त में कहते हैं-
इति गुह्यतमम् शास्त्रम्|

अर्थात्: - इस पूरे अध्याय को शास्त्र कहा है। यदि पूर्ण गीता जी का अनुपठन नहीं कर सकते और केवल इस पन्द्रहवें अध्याय का पठन कर लेंते हैं तो एक शास्त्र रूपी अध्याय का पूर्ण पठन माना गया है। पन्द्रहवें अध्याय के प्रथम दो श्लोकों में संसार की तुलना वृक्ष से की है और संसार-रूपी वृक्ष का वर्णन किया है। तीसरे श्लोक में संसार की स्थिति का वर्णन है, चौथे और पाँचवें श्लोक में संसार से मुक्ति के उपायों का वर्णन करते हैं। छठे श्लोक में मुक्ति के मार्ग का वर्णन करते हैं। श्रीभगवान जी कहते हैं कि जो सुख-दु:ख की चिन्ता नहीं करते हैं वही परम धाम की प्राप्ति कर सकते हैं, वह हमें बार-बार इस परम धाम को प्राप्त करने को कहते हैं। ऐसे ही सातवे, आठवें और नौवें श्लोकों में बताया है कि जीवन-मरण के कालचक्र से निकलकर उस परम धाम को कैसे जाना है?

गच्छन्ते पुनर्रावृत्तिम्|

अर्थात्:- हमें उस परम धाम को जाना है, जहाँ से वापिस इस लोक में नहीं आते हैं। यदि इस धाम को पा लिया तो, वो धाम कैसा है? ऐसा छठे श्लोक में बताते हैं, सातवें, आठवें और नौवें श्लोकों में बताया है कि इस शरीर से कैसे आत्मा का गमन होता है, इस काया की उसके बाद क्या गति होती है?

स्थूल से सूक्ष्म तक का ज्ञान देकर भगवान अपने पुरूषोत्तम रूप का दर्शन करवाने वाले हैं। इस पूर्ण अध्याय के अन्त तक हम यह सब देखेंगे और जानेंगे। इस विशिष्ट अध्याय का अध्ययन करते हैं ।

15.1

श्रीभगवानुवाच
ऊर्ध्वमूलमधः(श्) शाखम्, अश्वत्थं(म्) प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि, यस्तं(वँ) वेद स वेदवित्॥15.1॥

श्रीभगवान् बोले – ऊपर की ओर मूल वाले (तथा) नीचे की ओर शाखा वाले (जिस) संसार रूप अश्वत्थ वृक्ष को (प्रवाह रूप से) अव्यय कहते हैं (और) वेद जिसके पत्ते हैं, उस संसार-वृक्ष को जो जानता है, वह सम्पूर्ण वेदों को जानने वाला है।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन!

ऊर्ध्वमूलमधः(श्) शाखम्|

अर्थात्:- ऊपर की ओर मूल वाले, नीचे की ओर शाखाओं वाले संसार-रूपी अश्वत्थवृक्ष को अव्यय कहते हैं। वेद जिसके पत्ते हैं। इस वृक्ष को जो जानता है, वह समस्त वेदों को जानने वाला है। ऐसे वृक्ष की कल्पना मात्र से पूर्ण श्लोक समझ में नहीं आता है। इसके लिए एक वृक्ष का चित्र, जिसकी जड़ें ऊपर की ओर और शाखाएँ नीचे की ओर हैं, नीचे बताया गया है-

इस ऊर्ध्वमूल वाले वृक्ष की कल्पना एक मनुष्य के शरीर से की गई है, ऊपर की तरफ जड़ों को मानव का सिर/शीश कहा गया है। यदि मानव के किसी भी अङ्ग रूपी शाखा में चोट लगती है तो वह जीवित रह सकता है। यदि कोई अङ्ग विच्छेद हो जाए अर्थात् यदि कोई अङ्ग किसी दुर्घटनावश कट जाता है तो भी वह मनुष्य जीवित रह सकता है परन्तु मनुष्य के सिर पर चोट लगने से उसके प्राण निकल जाते हैं अर्थात् - वह जीवित नहीं रहता।

श्री आदि शङ्कराचार्य जी कहते हैं-

ऊर्ध्वमूलम् कालतः कारणत्वात् सूक्ष्मत्वात्
नित्यत्वात् महत्त्वात्वा ऊर्ध्वामुच्यते।।

अर्थात् - सूक्ष्म होने के कारण, नित्य होने के कारण, हम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण, श्रेष्ठतम होने के कारण ऊर्ध्वमूल कहा गया है।
उपरोक्त अश्वत्थवृक्ष(संसार-रूपी वृक्ष)में ऊपर की ओर परमात्मा को जड़ें माना गया है और वृक्ष की शाखाएँ संसार की विभिन्न श्रेणियाँ।

एक कथानुसार श्री रामतीर्थ जी बहुत ही बड़े गणितज्ञ थे। वह एक बार किसी कार्यक्रम के लिए जहाज़ से अमेरिका जा रहे थे, उस जहाज़ का कप्तान उनके सिद्धान्तों से बहुत प्रभावित हो गया और काफी समय बीत जाने पर भी जब उनको कोई लेने नहीं आया तो उसने पूछा कि आपको कोई लेने आ रहा है? उनके न कहने पर वह उनको अपने घर चलने को आमन्त्रित करता है। स्वामी रामतीर्थ जी भी मान जाते हैं और उनके साथ उनके घर जाते हैं। कुछ देर बाद जब भोजन कर लेते हैं और बातें कर रहे होते हैं तो कप्तान का पुत्र अपने पिताजी से प्रश्न पूछता है कि सरल रेखा(लाइन) किसे कहते हैं? वह अपने पुत्र को स्वामी रामतीर्थ जी से मिलवाता है और कहता है कि तुम्हारे प्रश्न का उत्तर यह देंगे तो स्वामी जी भी मान जाते हैं। वे बालक से पूछते हैं कि, तुम्हें उत्तर कक्षा के विषय में चाहिए या जो सत्य है वह। इस बात पर वह कप्तान कहता है कि यह कौन सा जवाब है? क्योंकि सब जानते हैं कि सरल रेखा दो बिन्दुओं को जोड़ने से बनती है, तो उत्तर अलग कैसे हो सकते हैं?

स्वामी रामतीर्थ जी कहते हैं, सत्य है कि सरल रेखा दो बिन्दुओं को जोड़ने से बनती है परन्तु उसका आधार क्या है? उदाहरण के लिए वह मेज़ को आधार बनाते हैं और पूछते हैं कि उस मेज़ का आधार क्या है तो कप्तान कहता है कि यह कमरा, जहाँ वह दोनों बैठे हैं। तब स्वामी रामतीर्थ जी पूछते हैं कि कमरे का आधार क्या है तो कप्तान कहता है कि उसका घर। घर का आधार धरती का टुकड़ा, तो स्वामी जी कहते हैं कि यदि हम उस धरती पर सरल रेखा बनाते हैं तो अन्तरिक्ष से वह कैसी दिखेगी? वह गोल दिखेगी, सीधी नहीं। तब वह कप्तान चक्कर में पड़ जाता है और अपने कुछ गणितज्ञ मित्रों को मिलने के लिए बुलाता है। वे भी निरुत्तर हो जाते हैं तो अगले दिन आपातकालीन मीटिङ्ग बुलाई जाती है, तब वहाँ पर स्वामी रामतीर्थ जी प्रमाण सहित स्पष्ट करते हैं कि शून्य से बड़ा कुछ भी नहीं है।

जो व्यक्ति खाली हाथ भारत से अमेरिका गया और जिसे कोई जानने वाला भी नहीं था, वह सातवें दिन वहाँ के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के घर भोजन कर रहे थे। यह तो जग विदित है कि शून्य विश्व को भारत की ही देन है। श्रेष्ठता ऊपर रहने से नहीं आती। जो ऊर्ध्वमूलम् कहा गया है वह श्रेष्ठता अपने अन्दर पैदा करनी पड़ती है। यह जो संसार हम देखते हैं वह वैसा नहीं है। जो चित्र में अश्वत्थवृक्ष हम देख रहे हैं वह परमेश्वर से उसकी जड़ों के द्वारा जुड़ा हुआ है और शाखाएँ विभिन्न योनियाँ हैं और उनके पत्ते वेद हैं। जब तक जड़ को चैतन्यता नहीं मिलती तब तक कोई कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। अश्वत्थ का अर्थ है कि जो अप्रत्यक्ष रूप से इस संसार से जुड़ा हुआ है वही अव्यय है। इस संसार को गतिशील रखने वाला है। उदाहरण के लिए पीपल का वृक्ष। वायु के प्रवाह के विपरीत चञ्चल स्वभाव के कारण उसके पत्ते चलायमान रहते हैं, वैसे ही संसार रूपी वटवृक्ष गतिशील है और परिवर्तनशील है, अविनाशी है।

15.2

अधश्चोर्ध्वं(म्) प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।2।।

उस संसार वृक्ष की गुणों (सत्त्व, रज और तम) के द्वारा बढ़ी हुई (तथा) विषय रूप कोंपलों वाली शाखाएँ नीचे, (मध्य में) और ऊपर (सब जगह) फैली हुई हैं। मनुष्यलोक में कर्मों के अनुसार बाँधने वाले मूल (भी) नीचे और (ऊपर) (सभी लोकों में) व्याप्त हो रहे हैं।

विवेचन:- श्रीभगवान कहते हैं कि इस वटवृक्ष की जड़ों को पोषित करने के लिए गुणों के तत्त्व प्रवाहित होते हैं।

तीन प्रकार के गुण होते हैं-सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। संसार की हर वस्तु किसी न किसी गुण विशेष से होती है। हम व्यक्ति विशेष को उसके गुणों के आधार पर जाँच सकते हैं कि उसमें कौनसे गुण हैं। जब हम कोई अच्छा कार्य अर्थात् - विवेचन सुन रहे हैं तो हमारा सतोगुण चल रहा है। यदि कुछ अन्य कार्य कर रहे हैं अथवा कोई क्रिया कर रहें हैं तो हमारा रजोगुण प्रधान होता है और यदि हम सो रहे हैं, कोई आलस्य कर रहे हैं या प्रमाद में हैं और कोई व्यक्ति कुछ गलत कार्य करता है तो उस समय उसका तमोगुण प्रधान होता है। हमें यह समझ जाना चाहिए कि वह व्यक्ति तमोगुण से प्रेरित होकर गलत कार्य कर रहा है। मनुष्य को इन्हीं तीन गुणों के आधार पर जाँचा-परखा जाता है। यह तीनों गुण मनुष्य में होना आवश्यक है परन्तु किस गुण का अधिक प्रभाव है वही देखा जाता है।

शब्द, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श- इन पाँच तत्त्वों से निर्मित यह शरीर है और इन्हीं पाँच तत्त्वों को हम प्रवाल कहते हैं। प्रवाल एक तरह का पौधे पर नव अङ्कुरित होने वाला पत्ता या फल का छेद होता है और वहीं से नई पत्ती या पुष्प खिलता है।

इस ऊर्ध्वमूल वृक्ष को हम इष्ट मान लें और जो शाखाएँ हैं वह तीनों गुणों से प्रवृत्त हैं। इन पर जो प्रवाल हैं और पत्तियाँ हैं, वे सब वेद हैं। तीनों गुणों का मूल तत्त्व विभिन्न योनियाँ हैं, वे हैं-मनुष्य योनि, देव योनि, यक्ष योनि आदि। ये सब ऊपर की योनियाँ हैं जो अच्छे कर्मों से प्राप्त होती हैं। कर्मों के आधार पर ही योनियाँ प्राप्त होती हैं कि आधार शाखा मिलेगी या ऊर्ध्व शाखा। मनुष्य के ऊपर की योनि में देव, गन्धर्व आदि योनियाँ होती हैं और आधार योनि में प्रेत, कीट, पतङ्ग आदि। जो नीचे की शाखाएँ हैं वे भी सब योनियाँ हैं। ये योनियाँ अहंता, ममता और वासना से उत्पन्न होती हैं। यह सब हमारे विचारों से ही उत्पन्न होती हैं।

कुछ लोग भगवान के लिए गलत धारणा बना लेते हैं और परिस्थिति बदलने का दोष भी भगवान पर लगाते हैं परन्तु हमें श्रीभगवान को-

ईश्वरः तू परजण्य व द्रश्टव्यः।

इसका तात्पर्य है कि ईश्वर को हमें वर्षा की भाँति समझना चाहिए। जैसा हम बीज बोएँगे वैसी ही फसल आती है। ईश्वर केवल अपनी कृपा रूपी वर्षा बरसा रहे हैं परन्तु हमने जो बीज बोए थे वैसा फल ही मिलता है। हमने जो भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कार्य किए हैं, उन्हीं का परिणाम मिलता है।

15.3

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते, नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं(म्) सुविरूढमूलम्, असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।।3।।

इस संसार वृक्ष का (जैसा) रूप (देखने में आता है), वैसा यहाँ (विचार करने पर) मिलता नहीं; (क्योंकि इसका) न तो आदि है, न अन्त है और न स्थिति ही है। इसलिये इस दृढ़ मूलों वाले संसार रूप अश्वत्थ वृक्ष को दृढ़ असङ्गता रूप शस्त्र के द्वारा काटकर –

विवेचनः- हम बहुत सारी दन्तकथाओं में पारिजात वृक्ष के विषय में सुनते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि जैसा हमने संसार रूपी वृक्ष को देखा वैसा कहीं भी उपलब्ध नहीं है परन्तु इसका न ही कोई आदि है ओर न ही कोई अन्त है। यह अश्वत्थवृक्ष अपने मूलतत्त्व से अनादिकाल से जुड़ा हुआ है। ऐसे अनन्त को हम अपनी बुद्धि से नहीं समझ सकते, उसके लिए हमें परम् ज्ञान की आवश्यकता है। एक उदाहरण के लिए यदि हम एक कागज के टुकड़े को नष्ट करने की कोशिश करते हैं तो हम उसको फाड़कर केवल छोटे टुकड़े कर सकते हैं। हम उसको जलाकर भी नष्ट नहीं कर सकते कयोंकि वह कोयले में परिवर्तित हो जाएगा। इसी प्रकार मूल तत्त्व कभी नष्ट नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह अपना स्वरूप निरन्तर बदलता रहता है।

श्री आदिशङ्कराचार्य जी कहते हैं-

ब्रम्ह सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रम्हैव नापर।

हम सनातन परम् ब्रह्म के अंश हैं, हम मूल तत्त्व से इस अश्वत्थवृक्ष से जुड़े हुए हैं परन्तु इससे अलग होने का एक ही उपाय है कि हम असङ्ग के शस्त्र से ही स्वयं को अलग कर सकते हैं। यह सब निरन्तर प्रयास से ही सार्थक है। यदि रङ्गमञ्च पर एक कलाकार स्वयं को रावण पुत्र बता रहा तो उसे पता है कि वह असल में एक कलाकार है। बाकि सब असत्य है।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा |
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल
मसङ्गशास्त्रेण दृढेन चित्त्वा || 3||

ऐसा जो नहीं करते हैं, वे पुनः- पुनः इस संसार में जन्म लेते हैं ।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

ऋषि वेदव्यास जी के पुत्र शुकदेव जी को एक बार दम्भ हो गया कि वह बहुत सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं और उनको कोई परास्त नहीं कर सकता। यह बात जब ऋषि वेदव्यास जी को पता चली तो उन्होंने शुकदेव जी से कहा कि आपने सांसारिक शिक्षा ग्रहण नहीं की है इसलिए उनको राजा जनक के पास शिक्षा लेने भेजा। वे पिताजी को न नहीं कह सकते थे सो चले गए।

मिथिला पहुँचे और वहाँ जा कर द्वारपाल को अपनी बहुत बढ़ाई करते हुए लम्बा-चौडा़ परिचय दिया और राजा को सन्देश देने को बोला। जब द्वारपाल ने राजा को सन्देश दिया तो राजा ने उनको वहीं पर प्रतीक्षा करने को कहा। शुकदेव जी बहुत अचम्भित हुए परन्तु प्रतीक्षा करने लगे। ऐसे ही दो-तीन दिन व्यतीत हो गए परन्तु राजा ने उनको प्रतीक्षा करने को कहा। फिर उन्होंने द्वारपाल को अपना परिचय ऋषि पुत्र कह कर और दीक्षा लेने आए हैं, ऐसा दिया तो उन्होंने उनको ले आने को कहा। तब राजा जनक ने उनकी बहुत सेवा की, नाना भाँति के व्यञ्जन परोसे और उनको विश्राम करने को कहा। कुछ समय उपरान्त उनको फिर से बुलाया गया तो वे राजा के सामने उपस्थित हुए। राजा जनक बोले कि आप बहुत अच्छे समय पधारे हैं। आज हम कुलदेवी की पूजा करते हैं और बहुत ही सात्त्विक साधुजन को एक तेल का पात्र लेकर पूरे नगर का चक्कर लगाना होता है। आप आए हैं तो आपसे बढ़कर कोई और नहीं इसलिए आपको यह काम करना है परन्तु पात्र से एक भी बूँद तेल गिरना नहीं चाहिए। अब शुकदेव जी घबरा गए कि एक भी बूँद तेल गिरा तो अनर्थ हो जाएगा इसलिए सारा ध्यान तेल के पात्र पर ही केन्द्रित रहा। जब वे नगर भ्रमण से वापिस राजा के पास पहुँचे तो राजा ने उनको पूछा कि उनका नगर कैसा सजा था, कैसा लगा उनको नगर?

तब शुकदेव जी बोले कि उन्होंने नगर तो देखा नहीं क्योंकि उनका सारा ध्यान तेल के पात्र पर ही केन्द्रित रहा कि तेल की एक बूँद भी नहीं गिरनी चाहिए। तब राजा ने बोला कि उनकी परीक्षा पूर्ण हुई। संसार में रह कर संसार से विरक्त होकर कैसे रहना चाहिए? वह परीक्षा पूर्ण हुई।

ऐसे ही संसार में रहकर भगवान पर अपनी आस्था रखते हुए अपने कार्य का निर्वहन करना ही असङ्गशस्त्रेण चित्त्वा को सार्थक करता है।

15.4

ततः(फ्) पदं(न्) तत्परिमार्गितव्यं(यँ) यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं(म्) पुरुषं(म्) प्रपद्ये यतः(फ्) प्रवृत्तिः(फ्) प्रसृता पुराणी॥15.4॥

उसके बाद उस परमपद (परमात्मा) की खोज करनी चाहिये जिसको प्राप्त होने पर मनुष्य फिर लौटकर संसार में नहीं आते और जिससे अनादिकाल से चली आने वाली (यह) सृष्टि विस्तार को प्राप्त हुई है, उस आदिपुरुष परमात्मा के ही मैं शरण हूँ।

विवेचन: - श्रीभगवान कहते हैं कि परम तत्त्व को प्राप्त करने के लिए ऐसा प्रयास करते रहना चाहिए जिससे हम फिर से इस

संसार में जन्म नहीं लें। हमें ऐसा भाव रखना चाहिए कि परमेश्वर को प्राप्त कर सकें, तो हम इस संसार रूपी सागर को पार कर सकते हैं। यदि सागर से एक बूँद ले ली जाए और उस बूँद को पुन: सागर में डाल दें तो वापिस नहीं पा सकते हैं वैसे ही संसार से विरक्त मनुष्य जब वैराग्य पा लेता है तो वह दुबारा वापिस नहीं आता है। उसी परम पिता परमेश्वर को पाने का निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए।

15.5

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा, अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः(स्) सुखदुःखसञ्ज्ञैः(र्), गच्छन्त्यमूढाः(फ्) पदमव्ययं(न्) तत्।।5।।

जो मान और मोह से रहित हो गये हैं, जिन्होंने आसक्ति से होने वाले दोषों को जीत लिया है, जो नित्य-निरन्तर परमात्मा में ही लगे हुए हैं, जो (अपनी दृष्टि से) सम्पूर्ण कामनाओं से रहित हो गये हैं, जो सुख-दुःख नाम वाले द्वन्द्वों से मुक्त हो गये हैं, (ऐसे) (ऊँची स्थिति वाले) मोह रहित साधक भक्त उस अविनाशी परमपद (परमात्मा) को प्राप्त होते हैं।

विवेचन: - श्रीभगवान जी कहते हैं कि मैं नहीं, मेरा नहीं, यह बोध जब किसी को होता है तो...

एक बहुत सुन्दर भजन-

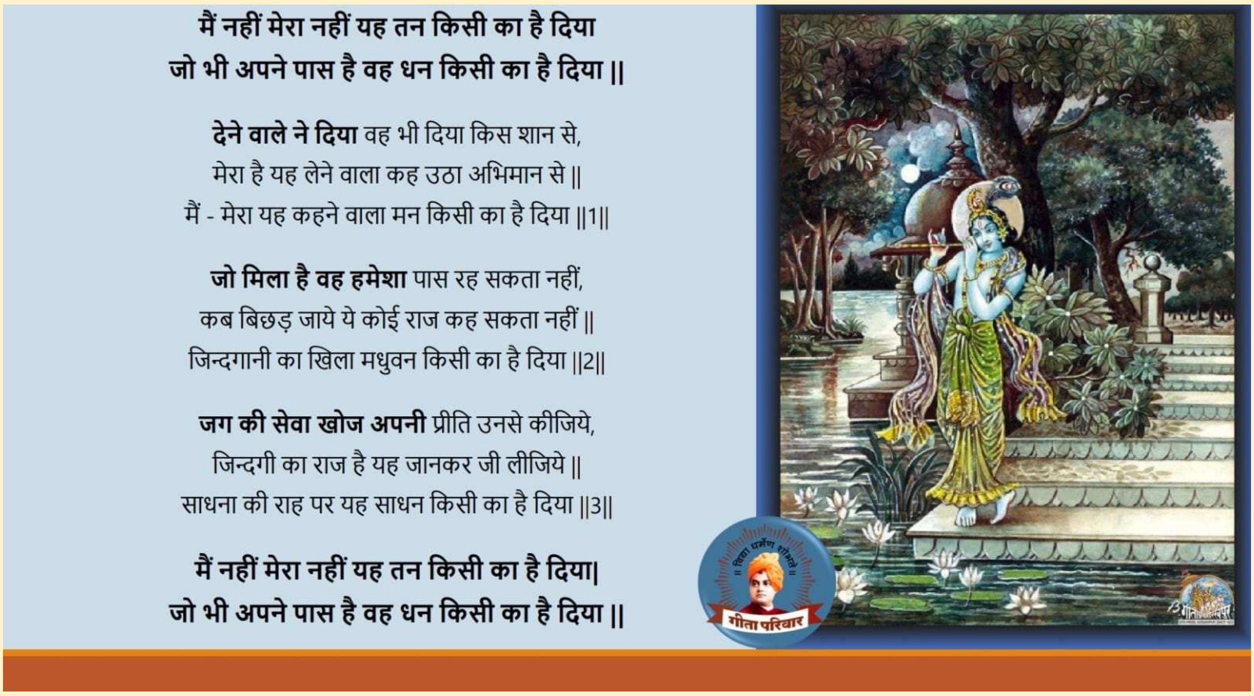

हम जो इस शरीर में हैं, वह शरीर भी मेरा नहीं है। यह तन, मन, धन सब उसी परम पिता परमात्मा का दिया हुआ है। हम उस सनातन परम ब्रह्म के एक अंश मात्र हैं। उस परमात्मा ने हमें यह तन बहुत शान से दिया, परन्तु हम स्वयं को भाग्यशाली नहीं समझकर नश्वर वस्तुओं को अपना बनाने हेतु प्रयास करते रहे।

जिसने सभी दोष पूर्ण वस्तुओं को त्याग दिया, ऐसा परम त्यागी मनुष्य अनन्त धाम को पा लेता है। जो सभी द्वन्द्वों से विमुक्त हो गया, जैसे- सुख-दुख, राग-द्वेष, लाभ-हानि और हर समय अन्तर्मन में निमग्न रहता है, वही मोक्ष प्राप्त करता है।

एक उदाहरण है-एक पति-पत्नी के घर एक मित्र आता है। उसको आश्चर्य होता है कि पति अत्यन्त दुःखी है परन्तु उसकी पत्नी बहुत खुश है, तो वह अपने मित्र से दु:ख का कारण पूछता है। वह कहता है कि उसको पाँच लाख की क्षति हुई है परन्तु उसके विपरीत पत्नी ने बताया कि इनको दस लाख के लाभ की आशा थी और पाँच लाख का लाभ हुआ है। अब वह उसी पाँच लाख का दुःख सञ्जो कर बैठे हैं। ऐसे लोग कभी सुख नहीं प्राप्त कर सकते और दूसरों को दोष-गुण समझाते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि हमें हर द्वन्द्व से विमुक्त होकर उस अनन्त को पाने की चेष्टा करनी चाहिए।

इसके बाद प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नकर्ता:-सीमा दीदी जी
प्रश्न:- बुद्धि को जड़ क्यों कहा गया?
उत्तर:- प्रकृति के दो तत्त्व हैं-जड़ और चेतन। चेतन तत्त्व पूर्णतया आत्मतत्त्व है और आत्मतत्त्व से जड़ से जुड़े अङ्ग भी चैतन्यमय दिखाई देते हैं। यदि शरीर से चेतन निकल जाता है तो बुद्धि, मन, शरीर सब बिना आत्मतत्त्व के जड़ हैं, स्थूल हैं। सारा शरीर ही बिना जीवात्मा के जड़ ही है।

प्रश्नकर्ता:- पी.एन.उपाध्याय भैया
प्रश्न:- अश्वत्थम् प्राहुरव्ययम् का अर्थ बताएँ?
उत्तर:- अश्वत्थ के दो अर्थ हैं- एक यह कि अश्वत्थ वृक्ष को पीपल के वृक्ष समान माना गया है, जिसकी पत्तियाँ निरन्तर चलायमान हैं। अश्वत्थ वृक्ष की गति कभी रुकती नहीं। यह पूरी प्रकृति चलायमान है, पीपल की पत्तियों की भाँति चञ्चल है, कभी रुकती नहीं, यह हर समय बदलती रहती है। जो आज स्थिति है वह कल नहीं होगी, इसको पूर्णतया नष्ट नहीं किया जा सकता है केवल इसका रूप बदल सकता है। इसको पूर्णतया नष्ट नहीं कर सकते क्योंकि संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष निरन्तर स्थिति में बदलाव दर्शाता है, पर नष्ट नहीं होता।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||